अनुबन्ध चतुष्टय- *ग) सम्बन्ध*

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी
सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

वेदान्तसारकार ने अनुबन्ध चतुष्टय के अन्तर्गत 'अधिकारी' और 'विषय' की विवेचना के पश्चात् तृतीयस्थानीय 'सम्बन्ध' पर प्रकाश डाला है। 'सम्बन्ध' पर प्रकाश डालते हुए वे कहते हैं-

"सम्बन्धस्तु तदैक्यप्रमेयस्य तत्प्रतिपादकोपनिषत्प्रमाणस्य च बोध्यबोधकभावः"।

अर्थात् सम्बन्ध तो जीव और ब्रह्म के ऐक्य रूप प्रमेय तथा उसका प्रतिपादन करने वाले उपनिषद् रूप प्रमाण का बोध्य-बोधकभाव स्वरूप है।

तीसरा अनुबन्ध होता है शास्त्र किंवा ग्रन्थ के साथ विषय का सम्बन्ध जो सर्वत्र बोध्य-बोधकभाव रूप होता है। बोध्य का अर्थ बोध का विषय और बोधक का अर्थ है बोध का जनक। विषय शास्त्र किंवा ग्रन्थ से उत्पन्न होने वाले बोध का विषय होने से बोध्य कहा जाता है और शास्त्र किंवा ग्रन्थ विषय-बोध का जनक होने से बोधक कहा जाता है; विषय में बोध्य भाव-बोध्यता और शास्त्र किंवा ग्रन्थ में बोधक भाव-बोधकता रहती है, यह बोध्य-बोधकभाव ही विषय और शास्त्र अथवा ग्रन्थ के मध्य सम्बन्ध होता है, इस सम्बन्ध का ज्ञान होने पर ही विषय का जिज्ञासु उसके बोधक शास्त्र किंवा ग्रन्थ के अध्ययन में प्रवृत्त होता है।

बोध्य-बोधकभाव-

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि बोध्य-बोधकभाव समग्र को सम्बन्ध मानने पर यह विषय और शास्त्र के मध्य साक्षात् सम्बन्ध न होकर परम्परा सम्बन्ध होगा, क्योंकि इसका बोध्यता रूप एक अंश विषय में रहता है और बोधकता रूप दूसरा अंश शास्त्र किंवा ग्रन्थ में रहता है और यह नियम है कि जो सम्बन्ध भिन्न-भिन्न अंशों से अपने सम्बन्धियों में रहता है वह परम्परा सम्बन्ध होता है और जो पूर्ण रूप से अपने सम्बन्धियों में रहता है वह साक्षात् सम्बन्ध होता है, जैसे घट के साथ चक्षु का संयोग पूर्ण रूप से घट

और चक्षु में रहने से चक्षु घट के बीच साक्षात् सम्बन्ध है और घटरूप के साथ संयुक्तसमवाय चक्षु और घटरूप के बीच परम्परा सम्बन्ध है क्योंकि इस सम्बन्ध का प्रथम अंश संयोग चक्षु में रहता है और दूसरा अंश समवाय से रहता है, संयुक्तसमवाय पूरा न चक्षु में ही रहता है और न घटरूप में ही रहता है। अतः बोध्य-बोधक भाव शब्द बोध्यता और बोधकता इन दो सम्बन्धों को बताता है। क्योंकि विषय में शास्त्र का सम्बन्ध होता है बोध्यता और शास्त्र में विषय का सम्बन्ध होता है बोधकता, विषय शास्त्र का बोध्य है इस प्रकार के सम्बन्यज्ञान से भी शास्त्राध्ययन में अध्येता की प्रवृत्ति होती है और शास्त्र विषय का बोधक है। इस प्रकार के सम्बन्धज्ञान से भी शास्त्राध्ययन में अध्येता की प्रवृत्ति होती है |

बोधकता का स्वरूप-

यह भी ज्ञातव्य है कि बोधकता का अर्थ बोधजनकता नहीं माना जा सकता क्योंकि विषय का बोध शास्त्र से नहीं किन्तु शास्त्रज्ञान से होता है, अतः शास्त्रबोध का जनक नहीं होता किन्तु शास्त्रज्ञान बोध का जनक होता है, इसी प्रकार बोधप्रयोजकता को भी बोधकता का अर्थ नहीं माना जा सकता क्योंकि शास्त्रज्ञान को बोध का जनक मानने पर तो शास्त्र बोधप्रयोजक हो सकता है, किन्तु ज्ञायमान शास्त्र को बोधजनक मानने पर शास्त्र बोध का जनक ही हो सकता है, प्रयोजक नहीं हो सकता क्योंकि जो जनक न होने पर भी किसी प्रकार कार्यजन्म में अपेक्षणीय होता है उसे ही प्रयोजक कहा जाता है, अत: बोधकता का अर्थ है जनक और जनकतावच्छेदक उभयसाधारण बोधप्रयोजकता, उसका स्वरूप है। प्रथम अन्यथासिद्धि से भिन्न सभी अन्यथासिद्धियों से शून्य होते हुये कार्यजन्म के पूर्व कार्योत्पत्तिदेश में नियम से विद्यमान होना।

भाषा परिच्छेद-कारिकावली में विश्वनाथ न्यायपञ्चानन ने पांच अन्यथासिद्धियां बताई है, पहली अन्यथासिद्धि जनकतावच्छेदक में रहती है, दूसरी जनकगत अन्य धर्मों में रहती है, तीसरी किसी अन्य कार्य के जनकरूप में सिद्ध होने वाले पदार्थ में रहती है, चौथी जनक के जनक में रहती है और पांचवीं लघु नियतपूर्ववर्ती से भिन्न में रहती है, जैसे दण्डत्व आदि में घट की पहली अन्यथासिद्धि, दण्डरूप आदि में दूसरी, शब्दजनकत्वरूप से सिद्ध होनेवाले आकाश में तीसरी, कुलालपिता में चौथी और घट के लिये मिट्टी आदि लानेवाले रासभ आदि में पांचवीं अन्यथासिद्धि रहती है। जनक में किसी भी

अन्यथासिद्धि के न रहने से और जनकावच्छेदक में एकमात्र पहली अन्यथासिद्धि के ही रहने से जनक और जनकावच्छेदक दोनों प्रथम अन्यथासिद्धि से भिन्न सभी अन्यथासिद्धियों से शून्य होने तथा कार्यजन्म के पूर्व नियम से विद्यमान होने से प्रयोजक कहे जाते हैं। अतः उक्त बोधप्रयोजकता ही बोधकता का अर्थ है।

जीव-ब्रह्म के ऐक्य में समस्त उपनिषदों का तात्पर्य होने से वह उपनिषदों का बोध्य प्रमेय है और उपनिषद् परमेश्वरप्रणीत होने से अथवा अपौरुषेय होने से प्रमाणभूत वेद का उत्तमाङ्ग होने से उक्त ऐक्य में प्रमाण हैं, बोध्यबोधकभाव उन दोनों में सम्बन्ध है।

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी